Chap-6

षष्ठ अध्याय

लोकनाट्यों के रंगमंच का स्वरूप

क. लोकनाट्य का रंगमंच ।

ख. आधुनिक नाटकों पर लोकनाट्य रंगमंच का प्रभाव ।

ग. लोकनाट्यों के रंगमंच का स्वरूप ।

घ. लोकसंगीत ।

ङ. लोकनृत्य ।

च. लोकनाट्यों का संक्षिप्त परिचय ।

लोकनाट्य का रंगमंच

लोकनाट्य रंगमंच की एक सुदीर्घ परम्परा भारतीय संस्कृति को पोषित करती आ रही है। लोकमंच किसी बन्धन या नियमों में जकड़े न होने के कारण सहज एवं सरल होते हैं।

लोकनाट्यों का रंगमंच स्थायी न होकर अस्थायी ही रहा है। क्योंकि जब इन लोकनाट्यों को रंगमंच पर खेलना होता है तब ही इस मंच का निर्माण कर लिया जाता है। नाटक के मंचीकरण पर इसके सफल व असफल होने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रत्येक नाटक के लिये मंच को उसके अनुरूप ही बनाया जाता है। किन्तु ज्यादातर मंच चारों ओर से खुले रहते हैं जैसे दशहरे के पहले नौ दिनों तक चलनेवाली रामलीला में चारों ओर से मंच खुला रहता है।

मंच के सामने वाले हिस्से में दर्शक बैठते हैं। रंगमंच को कई स्थान पर तख्तों या चौकियों से बनाया जाता है व गाँव के थोड़ा बाहर जाकर समतल मैदानों पर या चौपालों पर या रि चबुतरों पर इन मंचों की सजावट की जाती है। मंच पर आम के पत्तों की लड़ियाँ बनाकर जगह-जगह लटका दी जाती है।

रंगीन कपड़ों व इनके किनारों पर सुनहरा या सोना चांदी के कलर का गोटा भी लगाया जाता है। फूलों से मंच को सजाया जाता है। मंच दिखने में तो साधारण ही होता है। कभी-कभी इसे एक मंडपीय आकार का भी बना दिया जाता है। जब मंच तीनों ओर से खुला होता है तो एक जगह पीछे की ओर कपड़ा लगा दिया जाता है, जिससे दर्शक तीनों और बैठकर इन लोक नाट्यों का आनंद उठा सकें। नौटंकी,म ाच, भवाई, रामलीला, रासलीला आदि लोकनाट्यों में इस प्रकार के मंचों का प्रयोग किया गया वह कई दशकों के बाद आज भी इसी तरह के रंगमंचों को प्रयोग में लाया जा रहा है।

मंच पर लोकनाट्य की कथा को पात्रों द्वारा आपसी संवादों में ही दृश्य उपस्थित कर दिया जाता है। कभी इसमें महलों का वर्णन कर दिया जाता है तो कभी युद्ध का वर्णन हो जाता है।

इसकी खास बात तो यह है कि इसमें दृश्य योजना नहीं होने से पर्दे लगाने की आवश्यकता नहीं होती व स्टेज पर रंगव्यवस्था व रूपसज्जा की भी ज्यादा जरूरत नहीं पड़ती। मंच पर ही गोल-गोल चक्कर लगाकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच जाते हैं एवं संवाद बोलते हैं। आवश्यकता पड़ने पर संवाद दूसरी तीसरी बार भी दोहराये जाते हैं।

लोकमंचों की इन्हीं विशेषताओं के कारण आधुनिक शिष्ट नाटकों को भी इनसे प्रेरणा व उर्जा लेनी पड़ी। आज के नाटकों पर हम अब भी इन लोकनाट्यों की झलक को सहजता से देख पाते हैं। यही कारण भी रहा कि लोकनाट्य परम्परा ने संस्कृत नाट्य रूपों से बिना प्रभावित हुये मंच पर एक अलग पहचान देने का प्रयास किया। यह लोकमंच धीरे-धीरे साधारण से सर्वसाधारण तक अपनी बात को जनता के बीच पहुँचाने में सफल हुआ। दर्शकों के इतने करीब होने पर भी लोकनाट्यों में जिन रुढ़ियों को दोहराया जाता रहा था उसे आज तक आधुनिक हिन्दी का प्रयोगशील रंगमंच भी अपनाता रहा है।

आधुनिक नाटकों पर लोकनाट्य रंगमंच का प्रभाव :

पाश्चात्य रंगमंच में अयथार्थवाद रूप को देखा जा सकता है। आधुनिक युग में 'ब्रेख्त' के नाटकों में इस अयथार्थवादी नाट्य परम्परा को अभिव्यक्ति मिली है।

'ब्रेख्त' के 'एपिक थिएटर' में कई अवधारणाओं का समुचित प्रयोग है। उनकी यह प्रमुख उपलब्धि 'टोटल थिएटर' की अवधारणा भारतीय लोकनाट्य परम्परा से

जुड़ती है।

'भारतीय लोकनाट्य' में गीत का प्रयोग किया जाता है जो ब्रेख्त के नाटक में भी मिलता है। साथ ही पात्र द्वारा नृत्य गीत का प्रयोग भी नाटक में किया जाता है। संगीत का उपयोग भी किया जाता है। ये सभी विशेषताएँ ब्रेख्त के 'टोटल थिएटर' में भी परिलक्षित होती है। लोकनाट्य में दर्शकों से पात्रों की बातचीत नाटक को तोड़ती है अर्थात् दर्शकों को नाटक में भावों को बहने से रोकती है, उन्हें यह बताती है कि यह नाटक है यथार्थ नहीं। यही अवधारणा ब्रेख्त के पार्थक्य प्रभाव के रूप में आयी है। इस प्रकार भारतीय लोकनाट्य एवं ब्रेख्त के टोटल थिएटर में बहुत साम्य प्रतीत होता है। यह अवधारणा ऊपरी तौर पर सही प्रतीत होती है।"[1]

दोनों ही भारतीय लोकनाट्य एवं ब्रेख्त का टोटल थिएटर तात्विक आधार पर तो एक दूसरे के समकक्ष है। परन्तु प्रयोगों के आधार पर भिन्नता लिये हुए है।

"ब्रेख्त का मुख्य उद्देश्य नाटक को पुराने पड़ चुके शिल्प से निकालकर नये रूप में प्रस्तुत करना था। वह नये शिल्प एवं शैली का प्रयोग कर नाटक को नये रूप में, नवीन प्रतीकों के सृजन से, नवीन सौन्दर्य के निर्माण से, मंचसज्जा एवं उनके पात्रों के चयन से लेकर, अन्य सभी वस्तुओं को साधारण रूप में प्रस्तुत करना चाहता था।

जी चीजें टूटी हुई हैं, इस्तेमालशुदा हैं जो इन्सान के हाथ लगने से घिस गई हैं, पीत्तल के कटोरे जिनमें दगचे पड़े हुए हैं जिन्हें सैंकड़ों हजारों हाथों ने छुआ है जो 'हरजाई' होकर 'खास' हो गई है, मुझे ये सब चीजें प्यारी हैं।"[2]

इस प्रकार का रंगमंच ब्रेख्त का था। अतः उसने अपने नाटकों में पुराने से नवीन सत्य का उद्घाटन किया।

"ब्रेख्त ने रंगमंच की पुरानी परम्परा को तोड़ते हुए हमारे समय की आर्थिक और सामाजिक स्थितियों के सन्दर्भ में नये प्रयोग किये। उसने त्रासवादी को कॉमेड़ी और कॉमेड़ी को त्रासवादी बना दिया।"[3]

प्राचीन समय से चली आ रही भारतीय लोकनाट्य रंगपरम्परा को ब्रेख्त ने सही ढंग से पहचाना और उसने उसे एक सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। आधुनिक हिन्दी नाटकों में जिस लोकनाट्य शैली की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा ब्रेख्त ने प्रदान की।

"उनके नाटकों के द्वारा हमें यह समझने में मदद मिलती है कि कैसे हमारी नाट्य परम्परा में ही रंगमंच की खासियत छिपी है, जहाँ यथार्थवादी तानाबाना बुनने की जरूरत ही नहीं पड़ती।"[4]

किन्तु फिर भी प्राचीन समय से चली आ रही इन परम्परा ओं में आज भी "गहन अन्धकार ओढ़े हुए अवनि और ढेर सा अन्धेरा बरसाता अम्बर, उसमें कहीं दूर से स्वरलरियों का संगीतमय जादू बरबस मन को वशीकृत कर लेनेवाला, छितरे दर्शक, तीन या चारों तरफ से प्रेक्षकों से घिरा खुला मंच, सुगबुगाती प्रकाशव्यवस्था आदि यही तो लोकनाट्य का स्वरूप है।"[5] अपनी ओर आकर्षित कर ही लेता है।

लोकनाट्य स्वरूप तो उसकी सादगी में बसा हुआ है। चाहे वह राजस्थान की रेत हो या फिर मालवा की सुगंधित मिट्टी, या फिर चाहे वह असम के सुदूर पहाड़ियों की उपल्यकायें हों या समुद्र की लहरों के पास किसी दक्षिणालय मंदिर का प्रांगण हो दर्शक उस लोकनाट्य की ओर बरबस ही खिंचा चला जाता है।

"परिवेशजन्य अनुभूतियाँ अक्सर सामूहिक रूप में प्रगट होती है। ग्राम्यांचल

की रुमानी अमराइयों में कूकती कोकिला का लरजता कंठ स्वर या कटी हुई सुनहली फसल का खलिहान में द्रावण का मधुर संगीत या किसी ऋतुपर्व का सामाजिक बोध धीरे-धीरे अन्त स्थल में छिपी तरंगों को उद्वेलित करते हैं। और यूं ही ग्राम्यांचल की गहराती रात की खामोशी में लोकनाट्य जन्म लेता है।"[6] इसीलिये लोकनाट्य दर्शकों का दृष्टिकोण शास्त्रीय नाटकों से भिन्न हो जाता है।

ये सभी तत्व मिलकर हों तो इसके स्वरूप का निर्माण करने में सहायक हैं। यह लोकनाट्य मानव जीवन की अभिव्यक्ति होने के कारण उसके समस्त परिवेश और मान्यताओं से जुड़ा हुआ है और उनके स्वरूप में परिवर्तन संयम और परम्परा के अनुसार ही होता आ रहा है। मनोरंजन के उद्देश को साथ लेकर चलने वाला यह लोकनाट्य कभी-कभी व्यंग्य के तीर भी चुभा देता है। जनमानस के मन की गहराइयों में उतरकर उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति भी करता है। इसलिये अभी तक वह एक वटवृक्ष की तरह खड़ा हुआ है और इसकी कई शाखायें एवं प्रशाखायें निकलकर इस लोकनाट्य को सिंचित करने में लगी हुई हैं। उसके कथानक सम्बन्धी विशेषतायें उसे सदाबहार उक्ति से अभिभावित करने से नहीं चूकती। एक समय ऐसा भी आया जब पारसी रंगमंच ने भारत की इस लोकनाट्य धरती पर कदम रखा और अपने प्रदर्शनों में उन्होंने इसकी रुपरेखा को ही बदल डाला जैसे -
"सीता की भूमिका अब रंडिया निभा रही थी। राम अब रसिया के रूप में मंच पर आने लगे थे। दर्शक समाज को इसमें कोई ऐतराज नहीं था। जैसे-जैसे राष्ट्रीय चेतना और आजादी की लड़ाई तीव्र होने लगी, ऐसे प्रदर्शनों के प्रति साहित्यिकों, बुद्धिजीवियों में विरोध जगा, विशेषकर 'रामलीला' के अवसरों पर जगह-जगह नाट्य प्रदर्शन शुरु हुए और फिर यह रंग उत्साह बड़ी तेजी से बढ़ा।"[7]

अतः इतना तो स्पष्ट समझ में आता है कि आधुनिक काल के आरंभिक दौर से लेकर अंग्रेजी एवं पाश्चात्य आदि तक नाट्य प्रभावों से प्रभावित होकर हमारे लोकनाट्य रंगकर्मी इसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहे हैं। यद्यपि उनके लिये यह

कठिन कार्य था फिर भी वे उनके प्रभावों से अलग तो नहीं रह सके और उनकी स्वस्थ परम्पराओं को अपने वैज्ञानिक रूप में ढालने लगे।

लोकमंच एवं शास्त्रीय रंगमंच के परस्पर आदान-प्रदान से कुछ लाभ व कुछ नवीन प्रश्नचिन्ह :

वैज्ञानिक सुविधाओं और यन्त्रों से नाट्यमंडपों एवं मंचों के आधार पर इस आधुनिक युग में रंगभवनों का निर्माण किया गया और इसमें कुछ योगदान पश्चिमी रंगसाहित्य का भी रहा है। किन्तु ऐसे अस्थायी रंगमंच जिन्हें उपकरणों की सहायता से खड़ा किया जाता था उन्हें नाटक के प्रस्तुतिकरण के तुरंत बाद ही उखाड़ दिया जाता। यह प्राचीन लोकपरम्परा धीरे-धीरे विकसित होकर भारत के अनेक राज्यों व प्रान्तों, गाँवों में आज आधुनिक रूप से बट गई है एवं अपने प्रान्तों में यह लोकनाट्य अपने एक अलग नाम से प्रचलित हो गये हैं और उनमें थोड़ी-थोड़ी विविधतायें हो गई हैं। विभिन्नता लिये हुए इन जन लोकनाट्यों में जहाँ एकता का स्वर स्पष्ट दिखायी देता है वैसा ही इनकी शैलियों पर भी विशेष प्रभावों को और नजदीक से देखा जा सकता है।

'एक सत्य हरिश्चंद्र' लोकशैली में रचा गया लीला नाटक है। जिसमें पौराणिक पात्रों के माध्यम से कहीं लोकगायन शैली में तो कहीं लोककथा कथन शैली में कथ्य को प्रस्तुत किया गया। संस्कृत के नाटकों के रंग प्रयोगनुसार यह प्रारंभ में प्रस्तावना बांधी गयी है और अन्त में जिसमें राजा के श्रेष्ठ कार्यों तथा चरित्र की महिमा गाथा के साथ उसके भावी शासन की मंगल कामना की गई है, के स्थान पर आधुनिक बोध के दृष्टिगत भारत जननी की जय की गयी है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने लोक नाट्य सृष्टि को ध्यान में रखते हुए लोकभाषा, लोकसंगीत, नृत्य, कथावाचन, गायन आदि तत्वों को अच्छा प्रयोग किया है। नाटक की तासीर सीधे लोकमंचीय नाटकों के दर्शकों से जा मिली है। हिन्दी नाटकों में गीतों को अछूत माना जाता रहा है। परन्तु श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने इनका प्रयोग कर नाटक को

रसास्वादन के प्रश्नों से जोड़ दिया है। इस काल के अन्य कई नाटक इस श्रेणी में आते हैं।

नौटंकी शैली में लिखा गया श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का नाटक 'बकरी' है, जिसमें गाँव की समस्याओं को दर्शाया गया है और यह नाटक जब भी महानगरों में खेला गया है तो इसे बहुत पसंद किया गया। इस कारण इस नाटक के लोकशिल्प को भी इसने ग्रहण किया। मणि मधुकर का नाटक 'दुलारीबाई' भी कुचामणी ख्याल में लिखा गया है। इसमें एक ओर पारसी शैली में संवाद बोलने की प्रथा का भी प्रयोग है तथा दूसरी ओर लोकगीतों की धुन पर गीत रचना हुई है। इस नाटक ने भी बहुत अधिक प्रभाव आधुनिक नाटकों पर छोड़ा है। इसी तरह अन्य कई नाटक हैं जिन्होंने आधुनिक नाटकों को लोकनाट्य की शैली से जोड़ दिया तथा गाँवों व महानगरों दोनों जगह रंगमंच पर अपने प्रयोग किये। आलाअफसर (श्री मुद्राराक्षस), चरनदास चोर (श्री हबीब तनवीर), पोस्टर (श्री शंकर शेष), रावण लीला (श्री कुसुमकुमार), आदमी का गोश्त (डॉ. विलास गुप्ते) आदि ऐसे ही प्रयोग हैं।

कुछ प्रतिभावना रंगकर्मियों को संस्कृत के शास्त्रीय नाट्य परम्परा की अपेक्षा अपनी लोकरंग परम्परा से जुड़ना अधिक सहज और सार्थक प्रतीत हुआ। क्योंकि उनकी नजर में पश्चिम की शास्त्रीय पद्धति और भारत की प्राचीन शास्त्री पद्धति में कहीं कुछ भी समानता नहीं थी, दूर दूर तक कोई एक साम्य नहीं।

निर्देशक ब.व. करंत के अनुसार "हमारा लोकरंगमंच चूँकि जीवन्त रंगमंच है हम केवल दार्शनिकता या सिद्धांत के स्तर पर ही हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त हम कितने भी आधुनिक या शहरी क्यों न हो जाय, पर आज भी हमारी जड़ें गाँव में ही हैं। इसलिये भारतीय रंगमंच की खोज में लोक रंगमंच से जुड़ना मुझे सही लगता है। भारतीय संगीत और रंगमंच की चर्चा करनी हो तो तमाशा, यक्षगान, भवाई वगैरह के अलावा भला हम किस भारतीय रंगमंच की बात कर सकते हैं।"[8]

लोकनाट्यों के रंगमंच का स्वरूप :

संस्कृत नाटकों का जब ह्रास होने लगा तो लोकधर्मी नाट्य परम्परा का विकास प्रारम्भ हुआ। प्राचीन काल से चली आ रही इस लोकनाट्य परम्परा से जुड़ी सभी प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया तथा धार्मिक, सामाजिक, उत्सवों तथा मेलों में, लोकसंगीत और नृत्य से सजे इन नाटकों द्वारा आज भी जनमानस मनोरंजन करता चला आ रहा है। वैसे अब यह लोकनाट्य प्रान्तों में बँट गये हैं और अपनी-अपनी भाषा में खेले जा रहे हैं। ये लोकनाट्य प्रमुखतः चार प्रकार के हैं -

क) नृत्य प्रधान : जैसे आसाम का 'कीर्तनिया' ब्रज की 'रासलीला' आदि लोकनाट्य।

ख) हास्य प्रधान : जैसे महाराष्ट्र का तमाशा, गुजरात की भवाई आदि लोकनाट्य

ग) उत्तर प्रदेश की 'रामलीला', बंगला की 'जात्रा' आदि लोकनाट्य

घ) वार्ता प्रधान : जैसे उत्तरप्रदेश की 'नौटंकी', मालवा का माच आदि लोकनाट्य"[9]

इन लोकनाट्यों की कुछ सामान्य विशेषतायें हैं -

1. कथानक की दृष्टि से इसमें लोकजीवन में प्रचलित घटनायें की जाती हैं। कथाप्रवाह शिथिल होता है, केवल बीच-बीच में आवेग प्रदर्शित किया जाता है। कथावस्तु में वास्तविकता के साथ कल्पना का मिश्रण रहता है।
2. इनके पात्र जिस समाज और वातावरण में पलते हैं उसका प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका उद्देश्य अभिनय करना न होकर मनोरंजन करना होता है। विदूषकों का स्थान अधिक महत्वपूर्ण है, जो अपनी वेशभूषा, हावभाव और कहने के ढंग से दर्शकों को प्रभावित करता है।"[10]
3. चरित्र-चित्रण की अपेक्षा संवाद योजना पर मुख्य ध्यान दिया जाता है।
4. नृत्य तो इसका स्वाभाविक अंग है। ये नृत्य लोकनृत्य होते हैं जो लोकनाट्य में प्रयुक्त होते हैं। ये नृत्य अभिनय में मुख्य अंग के रूप में होते हैं, जिसमें से लोकनाट्यों को संगीत में प्रमुखता मिल जाती है और कलाकार स्वतन्त्र रूप से मंच पर संगीत के साथ नृत्य द्वारा अभिनय कर जनता का मनोरंजन करता

है। लोकनाट्य में आदि से अन्त तक हारमोनियम, ढोलक, मंजीरे, स्वरताल, सारंगी, बाँसुरी आदि पार्श्व संगीत प्रदान करते हैं।

5. भाषा काव्यात्मक होती है जिसमें स्थान-स्थान पर बोलीगत भेद के कारण विविधता मिलती है।
6. लोकनाटकों का महत्वपूर्ण अंग लोक रंगमंच है। यह रंगमंच प्रायः खुले मैदान में एक ओर तख्त डालकर बना लिया जाता है। बार-बार पर्दे उठाये-गिराये नहीं जाते। दर्शक मंच की ओर ध्यान न देकर अभिनय के रसास्वादन में तन्मय रहते हैं।
7. सहजता और सरलता लोकनाट्यों का सबसे बड़ा गुण है।"[11]

"असली लोकनाट्य तो वे हैं जो रंगमंच के लिये लिखे नहीं जाते किन्तु उन्हें तो लोकमंच पर खेला जाता है। वह तो जनता का ही नाट्य है। उसकी अपनी शैली है। जन साधारण तो नाट्य के प्रसंगों से पहले ही परिचित होते हैं। वे तो कलाकारों की प्रतिभा देखने आते हैं। "जो लोकनाटक की कल्पना हम नगरवासियों ने की है वह गाँववालों की नहीं है। ये लोकनाटक अभिजात वर्ग के नाटक की तरह अंकुर रूप में आरंभ नहीं होते। इस कारण लोकनाट्य का आकर्षण केन्द्र उसकी मंचन क्रिया है, कथानक नहीं। लोकनाट्य में दृश्यविधान नहीं है, न कोई रंगमंच की सजावट होती है। अभिनेता जो कहता है, वह भी अधिक महत्व नहीं रखता। दर्शक के मन पर उस नाटक की जो तस्वीर बनी हुई है, उसका चित्रण किस प्रकार होता है, उसी का महत्व है।"[12]

एक लोकनाट्य में संगीत, नृत्य, रंगमंच, पात्र, वेशभूषा, भाषा एवं संवाद तथा आज के नाट्यों में दृश्य विधान को महत्व दिया जा रहा है।

लोकसंगीत :

लोकनाट्यों में लोकगीतों, लोकवाद्यों एव लोकनृत्यों का समावेश तो होता ही

है साथ में इन तीनों की अलग-अलग कलायें होने पर भी यह एक-दूसरे पर आश्रित होती है। कोई भी ऐसा लोकनाट्य नहीं है जिसमें इन तीनों का समावेश न हो। नाट्य में लोकगीतों की धुन पर लोकवाद्यों का प्रयोग एवं नृत्य करना सम्भव है। महात्मा गाँधी के अनुसार "लोकसंगीत में चराचर जगत आता है और नृत्य करता है।"

लोकसंगीत के बारे में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का मत है "आधुनिक जीवन को सुन्दर, समृद्ध एवं सम्पन्न बनाने के लिये लोक संगीत सहायक सिद्ध होगा।" और रवीन्द्रनाथ टैगोर कहते हैं कि "संस्कृति का सुखद संदेश ले जाने वाली कला लोकसंगीत है।"

लोकनाट्य में संगीत की महत्ता को देखते हुए यह कह सकते हैं कि यह लोकसंगीत एक झरने की तरह है, जो पहाड़ों से फूटकर पत्थरों और चट्टानों से टकराता हुआ स्वच्छता से मनचाही दिशा में आगे बढ़ता है। कभी-कभी ये नाट्य तो लोकसंगीत की लय पर ही खेले जाते हैं। इस लोकनाट्य के संगीत के उपयोग में आने वाले स्वरवाद्यों एवं ताल वाद्यों की संख्या में कमी नहीं है। जैसे एकतारा, दोतारा, रावणहत्था, अलगोजा, बाँसुरी, ढोलक, खंजरी, मजीरा, करताल आदि का प्रयोग लोकसंगीत में किया जाता है।

लोकनाट्य में अलग-अलग प्रान्तों में लोकधुनों में अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है जैसे ब्रज की होरी, महाराष्ट्र की लावणी, गुजरात का गरबा, उत्तर प्रदेश की कजरी, पंजाब का महियाँ, टप्पा हरि आदि। इन लोकधुनों में संगीत को रागों का अंकन इस प्रकार किया जा सकता है।

1. पंजाब के हीर में भैरवी के स्वर लगते हैं तथा इसके साथ कोई ताल वाद्य नहीं बजाया जाता है। इसमें विशेष प्रकार के खटकों का प्रयोग किया जाता है। पंजाब का ही एक अन्य प्रसिद्ध लोकगीत 'महियाँ' युगल गान है। यह धुन दो प्रकार से प्रचलित है - 1. कोमल स्वर तथा कहरवा ताल में। 2. पहाड़ी

के स्वर तथा दीपचन्दी ताल में।

2. हरियाणा राज्य का बहुप्रचलित लोकगीत 'झूला' लिये सावन के मास में गाया जाता है। इसमें आभोग राग की झलक देखने को मिलती है।

3. राजस्थान के लोकगीतों में हरजस, झूमर, जांगड़ा आदि धुने हैं। राजस्थानी लोकगीतों में 'हरजस' का अपना ही महत्व है। इसकी धुनों में राग भूपाली के स्वर तथा कहरवा ताल प्रयुक्त होते हैं। जांगला गीतों के नाम विभिन्न रागों के नाम पर रखे हैं मारु, तोड़ी, खमाज, काफी, आदि।

4. राजस्थान में प्रचलित मांड गायन शैली प्रसिद्ध है। मांड लोकगीत किस राग पर आधारित है ये स्पष्ट नहीं होता। हाँ, खमाज घाट की इन पर छाया पड़ती है। शास्त्रीय संगीत में 'मांड एक राग भी है।'

5. बंगाल के 'प्रभाती' लोकगीत में खमाज घाट के कई रागों की झलक देखने को मिलती है और बंगाल के पारम्परिक प्रार्थना गीत में राग जैजैवन्ती का आभास मिलता है।

6. पहाड़ी लोकगीतों में पहाड़ी राग के स्वर लगते हैं। यदि चाहें तो भूपाली और दुर्गा इन दोनों रागों से पहाड़ी धुन बना सकते हैं।" इसमें बाँसुरी, नगाड़ा, नरसिंहा, ढोलक पीपणी, कांसी चिमटा आदि वाद्य प्रयुक्त होते हैं।

7. पंजाब के प्रणय गीतों में हीर रांझा के अतिरिक्त और भी ऐसी लोकधुने हैं, जो राग 'भैरवी' में गायी जाती है तथा इसे बिना ताल के गाने का प्रचलन है जैसे... सस्सी, पुन्नु, सोहनी-महिवाल, मिर्जा साहिबा आदि।

8. पंजाब में ही प्रचलित धुन 'बुल्लेशाह की काफी' राग काफी में प्रसिद्ध

लोकधुन है जिसमें शब्दों का बहुत महत्व है।"[12]

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि लोकनाट्य में लोकसंगीत के माध्यम से ताल व राग के आधार पर पात्रों के पैर घुंघरु की झनकार पर थिरकते हैं। ये राग शास्त्रीय भी हैं, जो मुख्य रूप से इस प्रकार हैं -

कलिंगड़ा, पीलू आसावरी, दादरा, शकीस्ता, जैजेवन्ती, काफी, धनाश्री, मेवाली अलिबाश्री, तिलाती, ध्रुपद, मालकौंस, भैरवी आदि सभी पर रागों का प्रयोग कर लोकनाट्यों में लोकसंगीत प्रस्तुत किया जाता है।

लोक नृत्य : इन लोकनाट्यों में पात्र अपने प्रवेश के समय भी नृत्य करता हुआ मंच पर आता है और अपनी नृत्य अदायगी से दर्शकों का मन मोह लेता है तथा कई बार संवाद बोलने के बाद नृत्य करने लगता है। कई बार वह समूह में जाकर नृत्य करता है, तो कभी-कभी संवाद बोलकर स्वयं ही नृत्य के द्वारा दर्शकों को अपनी बात कहता है। कथा के मध्य में एकरसता को तोड़ने के लिये भी वह नृत्य की भिन्न-भिन्न प्रणाली को अपनाता है। जैसे कि तमाशा व नौटंकी आदि में होता है।

लोकनाट्य में रंगमंच पर आज आधुनिक व शास्त्रीय प्रभाव के आ जाने से इनमें कई तरह के प्रयोगों को भी नया अंजाम दिया जा रहा है। इन नाट्यों में स्त्री के प्रवेश के समय उनके लटके-झटके को प्रधानता दिये जाने के कारण इसमें अश्लीलता का अंश समाविष्ट हो गया। परन्तु फिर भी नृत्य की प्रधानता को इन लोकनाट्यों में कम नहीं आंका जा सकता है।

आज हमारे अधिकतर लोकनाट्य धारावाहिक कथा शैली पर आधारित हो गये हैं। कथा पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक आदि किसी भी विषय के हो सकते हैं।" गेय शैली पर आधारित कथा में निरन्तरता पायी जाती है। कथा की निरन्तरता से

उपजी ऊब को दूर करने के लिये ही आज लोकनाट्यों में संगीत नृत्य एवं संवादों के माध्यम से, हास्य एवं व्यंग्य का समावेश हुआ है। इसके साथ ही "आज भी गाँवों में भारतत की नाट्य परम्परा अपने आदिम वैभव और समर्थता के साथ जिन्दा है। इन्हीं ग्रामीण नाट्य मंडलियों को सही मायनों में आज बढ़ावा देने की जरूरत है। शहरी युवकों को रंगमंच की प्राचीन परम्पराओं से अवगत कराया जाय, तथा सच्चे भारतीय रंगमंच को आधुनिक और सार्वभौमिक होने के साथ-साथ अपने रूप में भी भीरतीय हो, तभी विकसित हो सकेगा।"[13]

लोकनाट्यों का संक्षिप्त परिचय :

ब्रज - रासलीला - इसकी प्रस्तुति कृष्ण के जीवन चरित्र की नृत्य एवं अभिनय के रूप में की जाती है।

उत्तर भारत - रामलीला इसमें राम की कथा का वर्णन होता है।

असम - अंकिया श्रीकृष्ण की लीलाओं के विविध प्रसंगों को लिखा है तथा रामकथाओं को इसमें स्थान मिलता है।

कर्नाटक - यक्षगाव वर्तमान में रामायण, महाभारत, भागवत् जैसे धार्मिक एवं पौराणिक कथाओं को लेकर नाट्यरूप प्रस्तुत किये जाते हैं।

उत्तरप्रदेश - नौटंकी, स्वांग, भगत :

नौटंकी पुरानी ख्याल नाट्य शैली है, जो ओपेरा शैली का लोकनाट्य रूप है। इसकी नाटकीयता एवं संवाद शैली संगीत में ही निहित होती है। नौटंकी में नगाड़े वाद्य का स्थान सर्वोपरि होता है। नगाड़े की आवाज ही नौटंकी की पहचान होती है। इसके साथ हारमोनियम, ढोलक, सारंगी, शहनाई, चिकारा व ढपली वाद्य यन्त्र भी बजाये जाते हैं। पहले सार्वजनिक उत्सवों, समारोहों तथा शादी ब्याह को मौकों पर नौटंकी नाटकों का आयोजन करवाना एक गौरव की बात मानी जाती थी, लेकिन आज तो मेलों, ठेलों, नुमाइशों एवं त्यौहारों पर नौटंकी मण्डलियों द्वारा अपने थियेटर टिकिट प्रणाली से नाटकों का प्रदर्शन कर गुजारा किया जाता है। ग्रामीण अंचल की

माटी से जुड़ी इस विद्या के दर्शकों में कमी नहीं आई है। यद्यपि आज मनोरंजन के अनेक साधन प्रचलन में हैं, किन्तु वे नौटंकी का विकल्प नहीं बन सके, क्योंकि नौटंकी की बुनियाद ग्रामीण क्षेत्र में बहुत गहरी है ।

गिरीराज प्रसाद :

राजस्थान के भरतपुर जिले के कामा कस्बे में सन् 1917 में जन्मे मास्टर गिरिराज प्रसाद नाट्य शैली के ऐसे सिद्धहस्त कलाकार हैं, जो अपनी अनूठी आवाज के आगाज़ से राजस्थान, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश और बिहार राज्यों के ग्रामीण अंचलों में पिछले लगभग 6 दशकों से धूम मचाते हैं। नौटंकी का पर्याय माने जाने वाले 82 वर्षीय मास्टर गिरिराज आज भी इन राज्यों के ग्रामीण अंचलों में इतने लोकप्रिय हैं कि इनका नाम सुनते ही दूर-दूर से हजारों की संख्या में ग्रामीण खिंचे चले आते हैं। जब वे अपनी हाथरस शैली की गायकी में टोप पर आलाप लेकर अपने अभिनय व गायन की कला बिखेरते हैं, तो दर्शख इनकी कला को सम्मोहन में बंधे रातभर तक बैठे रहते हैं।

इस कलाकार की लोकप्रियता का अंदाज इसी में से लगाया जा सकता है कि सन् 1984 के दौरान भरतपुर में मनाये गये ब्रज महोत्सव में ऐतिहासिक नाटक अमरसिंह राठोड़ में अपनी जादुई आवाज और प्रभावी अभिनय से लगभग 80 हजार दर्शकों की भीड़ को लगातार पाँच घण्टे तक मन्त्रमुग्ध किये रखा।

मास्टर गिरिराज ने मात्र ग्यारह वर्ष की आयु से ही संगीत साधना आरम्भ कर दी थी। इनमें संगीत के प्रति गहरी रुचि और भविष्य की संभावनाओं को पहचान कर ही कामा कस्बे के संगीतज्ञ गिरिराजप्रसाद पाराशर ने इन्हें शास्त्रीय संगीत, मन्दिरों के पारम्परिक हवेली संगीत तथा स्वांग शैली की गायकी की शिक्षा प्रदान की थी। धीरे-धीरे उनकी रुचि ब्रज के लोकगीतों की ओर बढ़ती गई। इसके उपरान्त उन्होंने एक ओर राजस्थान की पारम्परिक संगीत धरोहर का उपयोग किया और दूसरी तरफ

ब्रज क्षेत्र की रसिया शैली व लोक संगीत के साथ-साथ शास्त्रीय संगीत की शिक्षा को भी आत्मसात् किया, जिसका इनकी गायन शैली पर बहुत प्रभाव पड़ा। मास्टर गिरिराज ने सन् 1936 के आसपास 16 वर्ष की अवस्था में ही उस समय के प्रसिद्ध नौटंकी में अभिनय शुरु कर दिया। उन्होंने नत्थाराम को नौटंकी कला का गुरु मानकर उनकी मण्डली में काम करते हुए देव पात्रों, स्त्री पात्रों तथा अनेक गायक पात्रों की भूमिकाएँ बखूबी निभाकर बहुत ख्याति अर्जित की। नत्थाराम की मृत्यु के बाद मास्टर गिरिराज उनकी नौटंकी मण्डली के प्रमुख अभिनेता बने। उस मण्डली में 15 वर्ष तक निरन्तर अभिनय का कार्य करके वे वापस कामा लौट आये और ब्रज क्षेत्र के उच्चकोटि के कलाकारों को साथ लेकर अपनी स्वतन्त्र मण्डली का गठन किया, जो गिरिराज व मनोहर की पार्टी के नाम से बहुत प्रसिद्ध हुई।

सन् 1955 के बाद इनकी स्वतन्त्र नौटंकी मण्डली का विघटन हो गया, लेकिन फिर भी ये इस क्षेत्र में सक्रिय बने रहे। दिल्ली के नाट्य विद्यालय 'गार्डन स्कूल' बसन्त विहार तथा लखनऊ के भरतेन्दु नाटक अकादमी में भी उन्होंने नौटंकी कला का अध्यापन शुरु किया एवं विद्यार्थियों के साथ मिलकर कई नौटंकियों की प्रस्तुतियाँ दीं। मास्टर गिरिराज ने अपनी नौटंकी कला प्रदर्शन के लिये सभी हिन्दी भाषी क्षेत्रों का भ्रमण कर नौटंकी नाटकों के मंचन के जरिये अपनी कला को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया। इस क्षेत्र में इनकी निरन्तर 60 वर्ष की साधना के फलस्वरूप सन् 1981 में उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी ने इनको रत्न सम्मान एवं ताम्रपत्र देकर सम्मानित किया तथा वर्ष 1983 में राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर ने भी इन्हें नकद राशि के साथ ताम्रपत्र एवं शील्ड प्रदान कर पुरस्कृत किया। मध्यप्रदेश सरकार ने भी उनकी लम्बी कला साधना, नौटंकी कला के संरक्षण एवं इस क्षेत्र में सृजनात्मक कार्य करने के उपलक्ष्य में 'तुलसी पुरस्कार' के साथ 50 हजार रुपये की नकद राशि एवं ताम्रपत्र प्रदान कर सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त इस कला साधक को दिल्ली संगीत नाटक अकादमी की ओर से भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री आर. वेंकटरमण ने भी बंगलोर में सम्मानित किया था।

मास्टर गिरिराज ने अपने जीवन में हजारों नौटंकी नाटकों में अपना अभिनय किया है, जिनमं मुख्यतः आल्हा-ऊदल, अमरसिंह राठोड़, संकरगढ़ संग्राम, मलखान का ब्याह, हरिश्चन्द्र तारामती, लैला-मजनू, माधवानल कमकंदर, शीरी-फरहाद, फूलमदे, सत्यवान-सावित्री जैसे अनेक भावपूर्ण, वीररस प्रधान एवं प्रेमाख्यान नौटंकी-नाटकों के मंचन में प्रभावी अभिनय किये हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने राष्ट्रीय एकता के संदेश तथा स्वतंत्रता आन्दोलन के वीरों के जीवन-चरित्र से सम्बन्धित राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत नौटंकी नाटकों मं भी महत्वपूर्ण अभिनय किये हैं। मास्टर गिरिराज प्रसाद अब भी 82 वर्ष की उम्र में यदा-कदा जनता की बेहद माँग पर अन्य नौटंकी मण्डलियों के साथ एक अतिथि कलाकार के रूप में अभिनय करने जाते हैं। नौटंकी के कथानक में प्रेमकथाओं को प्रमुखता मिली है तथा पौराणिक, धार्मिक, सामाजिक एवं देशभक्तिपूर्ण विषय भी हैं।

महाराष्ट्र - तमाशा, गम्मत ये श्रृंगार प्रधान व लौकिक विषयों से सुसज्जित तमाशा करनेवाली मंडली को 'कंड' कहते हैं।

बिहार - बिदेसिया, छत्तीसगडी, माच

तामिळनाडू - तेरुकूथु - धार्मिक नाट्य है। कथानक प्रमुख रूप से द्रौपदी से जुड़ी रहती है। द्रौपदी की पूजा कर उनके जीवन की कथा को प्रस्तुत किया जाता है।

मध्यप्रदेश - छत्तीसगढ़ी नाचा माच - नाच गीति नाट्य की शैली में रखा गया है इसका तमाशा की ही तरह मिलता जुलता रूप है।

हरियाणा - ख्याल वीर रस में खेला जाता है। एक वीरगाथा को सुनाया जाता

है।

राजस्थान - ख्याल कड़ा । श्री महेन्द्र भानावत ने 27 ख्यालों की सूची बताई। ये ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक तथा श्रृंगार रस में रंगे होते हैं।

गुजरात - भवाई - इसे 'वेश' भी कहा जाता है। आसाइत ठाकुर ने हेमाला पटेल की पुत्री गंगा को मुसलमान सुबेदार के यहाँ से छुड़वाकर लाने के लिये एक ही थाली में बोजन किये जिससे इनको जातिवालों ने अपनी जाति से बाहर कर दिया और इस प्रतिकार स्वरूप भवाई का जन्म हुआ। आज भी गुजरात में विसनगर का भवाई वेश विशेष लोकप्रिय है। अहमदाबाद की दर्पण आर्ट एकेड़मी संस्था में श्री चीमनलाल नायक द्वारा भवाई का नाट्य शिक्षण दिया जाता है।

बंगाल - 'जात्रा' - इसका अर्थ उत्सव या जुलूस है। इनमें श्रीकृष्ण लीलाओं का प्रछार रहा है। इसमें कथाकार अनिवार्य अंग है जो बीच में खड़ा होकर कहानी को आगे बढ़ाता है। जात्रा के मंच के चारों ओर दर्शक बैठते हैं। कलाकारों के वस्त्र भड़कीले होते हैं।

बुंदेलखंड - राई नाच।

भोजपुर - विदेसिया आदि । विदेसिया में कोई लोकनाट्य शैली है वह भिखारी ठाकुर का एक नाटक हो जो लोकनाट्य का पर्याय बन गया है।

उड़ीसा - कीर्तनिया - इसमें धर्म की प्रधानता होने के कारण भावुकतावश भक्त हरिलीला का भजन करते हैं। मध्य प्रदेश का नाचा नृत्य प्रधान लोकनाट्य है। इसमें छोटे-छोटे प्रहसनों को नृत्य एवं गीत के संयोजन से घुलमिलाकर मनोरंजन के साधन के रूप में लाया जाता है।

भारत में लोकनाट्य की धारा सतत् प्रवाहित होती रही किन्तु आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक एवं राजनीतिक नाटक लिखकर इस लोकनाट्य साहित्य एवं हिन्दु नाट्य साहित्य को एक नई दिशा दी। तथा प्रसादजी ने अपनें नाट्यों में नये-नये शिल्प व नई भाषा का प्रयोग कर लोकगीतों आदि को अपने नाटकों में स्थान दिया। फिर तो 1960 के बाद ही आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकशैली का प्रयोग अधिक हुआ।

नये विषय, नई शैली, नये वाद्य यंत्रों के प्रयोग से यह लोकनाट्य अपने पुराने रंगमंच को छोड़कर साठोत्तरी में एक विविध प्रकार के रंगमंच का निर्माण करने में सफल रहा। रंगमंच के लिये जिन नाटकों को नाटककार लिखता था वह इस लोकनाट्य शैली से अछूता नहीं रह सका और अपने नाटकों में इन शैलियों का भरपूर प्रयोग किया जिससे रंग निर्देशकों को भी लाभ हुआ है। लोकनाट्य शैली का प्रभाव विभिन्न स्तर पर रहा। प्रत्येक नाटककार को किसी एक तत्व ने प्रभावित किया तो किसी को किसी अन्य तत्व ने, या किसी को समूचे तत्वों के सम्मिलित रूप ने। इनको अपनाने में नाटककार का अपना एक निजी कारण भी प्रमुख रहा।

आधुनिक हिन्दी नाटककारों के नाटकों पर इस लोकनाट्य शैली के प्रभाव निम्न रहे हैं-

बकरी (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना), आला अफसर (मुद्रा राक्षस), एक सत्य हरिश्चंद्र (लक्ष्मीनारायण लाल), चरनदास चोर (ले. हबीब तनवीर), दुलारीबाई (मणि माधुकर), पोस्टर (डॉ. शंकर शेष), रावण लीला (डॉ. कुसुम कुमार) आदि हैं।

संदर्भ सूचि

1.	रंगमंच - बलवंत गार्गी	पृ. 182
2.	वही	पृ. 183
3.	वही	पृ. 184
4.	नाट्य वार्ता - कीर्ति जैन (पत्रिका)	पृ. 28
5.	रंगमंच सरोकार	
6.	हिन्दी वाङमय - बीसवीं शती - डॉ. नगेन्द्र	पृ. 164
7.	हिन्दी रंगकर्मः दशा और दिशा - जयदेव तनेजा	पृ. 127
8.	लोकसाहित्य का अध्ययन	पृ. 268
9.	वही	पृ. 269
10.	वही	पृ. 269
11.	रंगायन (मासिक) - संपा. महेन्द्र भानावत, उदयपुर - अप्रैल 1975	
12.	म्यूजिक - (डॉ. संगीता गौरांग)	पृ. 114-115
13.	नटरंग - अंक 46	पृ. 23